जून १९९६ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

अनाथपिंडिक -२

धर्म दर्शन

श्रेष्ठि अनाथपिंडिक मंत्रमुग्ध-सा भगवान की ओर अपलक देखता रहा और भगवान उस पर मंगलमैत्री की अविरल वर्षा करते रहे। उसका अनुत्तर धर्माभिषेक करते रहे। कुछ देर बाद श्रेष्ठि ने भगवान से यह औपचारिक प्रश्न पूछ लिया।

– भन्ते, भगवान रात सुख से तो सोये?

भगवान ने सुधा-वर्षिणी वाणी में उत्तर दिया –

– जो इसी जीवन में परिपूर्णरूप से नित्य, शास्वत, ध्रुव निर्वाणिक अवस्था का साक्षात्कार कर लेता है वह अरहंत हुआ व्यक्ति सही माने में ब्राह्मण बन जाता है। ऐसा पापमुक्त ब्राह्मण सदा सुख से ही सोता है। वह सभी दोषों से छुटकारा पाकर काम-संतापसे मुक्त हुआ शीतलीभूत हो जाता है। सभी आसक्तियों को दूर कर सर्वथा निर्भय हो जाता है। चित्त-शांति उपलब्ध कर अपशांत हुआ वह व्यक्ति सदा सुख की नींद ही सोता है।

श्रेष्ठि यह सुन कर गदगद हुआ। सचमुच कोई व्यक्ति चित्त-शांति से संपन्न होता है तो ही बुद्ध होता है। और बुद्ध होता है तो इन धार्मिक सद्गुणों को उपलब्ध कर सकने की ही सही शिक्षा देता है। वह सामने बैठे भगवान के चित्त की शीतलता का स्वयं अनुभव कर रहा है। वह खूब समझ रहा है कि यह एक धनवान व्यक्ति को ठगने के लिए किसी ढोंगी गुरु का प्रवंचन –प्रलाप नहीं है। भगवान के सान्निध्य में श्रेष्ठि धन्यता का स्वयं अनुभव कर रहा है।

भगवान ने देखा श्रेष्ठि का श्रद्धालु मानस सद्धर्म सुनने को आतुर है। अतः उन्होंने उसे धर्म का उपदेश दिया। क्रमशः उत्तरोत्तर शुद्ध धर्म प्रकाशित किया। धर्म सुनने वाला श्रावक गृहस्थ है, व्यवसायी है, धनपति है, धन संचय करने में संलग्न रहता है। गृहस्थ को धर्मपूर्वक, श्रमपूर्वक धन अर्जन करना ही चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं है। किसी के सामने हाथ पसारना उसके लिए उचित नहीं है। परंतु जब धन के प्रति गहन आसक्ति हो जाती है तब यह अर्जन और संवर्धन केवल संचय, संग्रह, परिग्रह तक ही सीमित रह जाता है और गृहस्थ की आध्यात्मिक उन्नति में बाधक बन जाता है। अतः आनुपूर्विक धर्मकथा कहते हुए भगवान ने सर्वप्रथम दान की महत्ता समझायी। परंतु धनार्जन कर, अपनी आय का एक भाग जनहित के लिए दान देकर भी यदि दानी शील धर्म का पालन नहीं करे तो सुखी नहीं रह सकता। वह दुःखमुक्ति की बुनियादी अवस्था ही नहीं प्राप्त कर पाता। अतः भगवान ने शीलपालन की अनिवार्यता समझायी। शीलवान व्यक्ति इस जीवन में तो सुखी रहता ही है, मरणोपरांत भी सद्गति का अधिकारी होता है। इसे स्पष्ट करते हुए स्वकर्मानुसार सद्गति-दुर्गति प्राप्त होने की धर्मनियामता समझायी। तत्पश्चात सदा काम-भोग में ही लिप्त रहने वाले गृहस्थ के क्लेश-कलुषमय जीवन की हानियां और विशुद्ध निष्काम जीवन की महानता समझायी।

परचित्तज्ञान की सिद्धि द्वारा भगवान ने अपने बोधिचित्त से देखा कि इस धर्मकथा को ध्यानपूर्वक सुनते-सुनते श्रेष्ठि अनाथपिंडिक का चित्त धर्म की गहराइयां समझ सकने लायक हो गया है। सामान्य धनवान गृहस्थ की अहंजन्य कठोरता पिघल गयी है और वह अत्यंत मृदुलचित्त हो गया है। उसके चित्त पर से कामछंदयाने राग-रंजन और व्यापाद याने द्वेष-दूषण दूर हो गये हैं। शारीरिक और मानसिक आलस्य-प्रमाद, उद्विग्नता, बेचैनियां और क्षोभ तथा शंका-संदेह के सभी नीवरण-आवरण भी हट चुके हैं। उसका मन एकाग्र है, अचंचल है, श्रद्धासंपन्न है, उदग्र है, प्रसन्न है, निर्मल है, और गंभीर धर्म समझने के लिए सर्वथा सक्षम है।

यह देख कर भगवान ने उसे उन चार आर्यसत्यों की देशना दी जो किसी भी सम्यक संबुद्ध द्वारा सम्यक संबोधि प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। इन चार आर्यसत्यों का स्वयं साक्षात्कार कर के कोई भी व्यक्ति अपने भवचक्र को दुर्बल बनाते-बनाते उसका नितांत भंजन कर लेता है और मुक्ति के स्रोत में पड़ कर आगे बढ़ता हुआ परम मुक्त अरहंत अवस्था प्राप्त कर लेता है।

भवबंधन में पड़े दुखियारे प्राणी के लिए यही तो प्रासंगिक बात है कि वह इस सच्चाई को स्वानुभूति द्वारा जान ले कि यह भवबंधन कितना दुखदायी है और यह कि दुःख का मूल कारण दुर्द्धर्ष तृष्णा है, आसक्ति है; जो कि हर मृत्यु के बाद नया-नया जन्म दे कर इस दुःखद भवचक्र को चलायमान रखती है। इस दुःख से नितांत मुक्त हो जाने का उपाय है जो कि शील, समाधि और प्रज्ञा का आठ अंग वाला मार्ग है; जिसके अभ्यास से यह मुक्त अवस्था प्राप्त हो सकती है। सभी सम्यक संबुद्धों द्वारा सत्य की यही खोज है जो उन्हें मुक्त हो सकने का मार्ग प्रशस्त करती है, जिससे कि वे स्वयं विमुक्त होकर औरों को विमुक्ति का मार्ग दर्शाते हैं। शील का पालन करते हुए चित्त को एकाग्र कर अपने भीतर नाम और रूप के यानी चित्त और शरीर के अनित्यधर्मा प्रपंच को विपश्यना विधि द्वारा अनासक्त भाव से देखना और देखते-देखते चित्त के विकारों को दूर कर लेना सिखाते हैं। पुनर्जन्म देने वाले पूर्व संचित कर्म-संस्कारोंका इस प्रकार क्षय करते-करते निरोध अवस्था का साक्षात्कार कर लिया जाता है। इंद्रियातीत परम सत्य का साक्षात्कार कर लिया जाता है।

यों भवचक्र से प्रपीड़ित किसी भी व्यक्ति को नितांत दुःखविमुक्ति की अवस्था प्राप्त हो सकती है। दुखियारे को और क्या चाहिए? दुःखविमुक्ति ही तो चाहिए। रोगी को रोगविमुक्ति, बंदी को बंधनविमुक्ति ही तो चाहिए। इसके लिए जो कार्य मुक्ति में सहायक है वही प्रासंगिक है। परंतु जब कोई व्यक्ति किसी संप्रदाय के बाड़े में बँधा होता है तो उसे उस संप्रदाय के कर्मकांडोंके प्रति तथा उसकी दार्शनिक मान्यताओं के प्रति इतनी गहरी आसक्ति बनी रहती है कि वह दुखविमुक्ति संबंधी इन प्रासंगिक सच्चाइयों को सुनना तक नहीं चाहता और उन-उन अप्रासंगिक मान्यताओं

को और क्रिया-कलापोंको धर्म मान कर उन्हीं में उलझा रहता है। ऐसी मनोस्थिति वाला व्यक्ति शुद्ध विमुक्तिप्रदायक धर्म को सुनेगा ही नहीं तो समझेगा कैसे? समझेगा ही नहीं तो धारण कैसे करेगा? और धारण नहीं करेगा तो उससे लाभान्वित कैसे होगा? वास्तविकता से दूर काल्पनिक अंधमान्यताओं का स्वप्निल जीवन उसे बहुत प्रिय लगता है। ऐसा व्यक्ति यथाभूत धर्म की सच्चाई का उपदेश सुनने से कतराता रहता है। डरता रहता है कि मेरी दार्शनिक मान्यताओं का क्या होगा? मेरे कर्मकांडोंका क्या होगा? मेरे संप्रदाय का क्या होगा?

परंतु सौभाग्य से अनाथपिंडिक ऐसे शंकालु व्यक्तियों में से नहीं था। वह भारत और भारत के बाहर अपने विपुल व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का कुशल संचालक था। अतः ठोस धरती पर पांव रख कर चलने की उसे आदत थी। निरर्थक भावुकता के स्थान पर यथार्थ का जीवन उसके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था। अतः उसने दत्तचित्त होकर तथता पर आधारित भगवान का उपदेश सुना। दुःख जीवन जगत की एक ठोस सच्चाई है। तृष्णा उसका मौलिक कारण है, यह उसे समझते देर नहीं लगी। तृष्णा जागती है तो उसके अपूरित रहने पर चिडचिडाहट होती है, द्वेष-दौर्मनस्य जागता है और उसके साथ-साथ अन्य अनेक विकारों का प्रजनन होने लगता है, उनका संवर्धन होने लगता है और अंतर्मन की तलस्पर्शी गहराइयों में उनका संचयन होने लगता है जो कि विकार-प्रजनन के अंतर्स्वभाव को पुष्ट से पुष्टतर करते रहता है। परिणामतः दुःख पर दुःख बढ़ते ही जाते हैं। समस्त संसार की सारी संपदा एकत्र करके भी इन विकारजन्य दुःखों से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। किन्हीं कर्मकांडोंसे, किन्हीं दार्शनिक मान्यताओं को कड़ाई से मान लेने से अथवा पुरोहितों द्वारा कोई धार्मिक अनुष्ठान करवा देने से इन विकारों की जड़ें नहीं निकलतीं। थोड़ी देर के लिए अपने आप को किसी भुलावे में भले भुलाए रखे। परंतु विकार-विमुक्त जीवन का यथार्थ सुख प्राप्त नहीं हो सकता। यह वह अपने अनेकानेक अनुभवों से जान चुका था। अतः उसे भगवान द्वारा दिया गया यथार्थ पर आधारित उपदेश बहुत उचित लगा, न्यायसंगत लगा, बुद्धिगम्य लगा। भगवान ने समझाया कि तृष्णा तथा उसके पीछे कतार बांधे समस्त विकारों का तन और मन से गहरा संबंध है और इन दोनों के संसर्ग से जो सुखद, दुःखद अथवा असुखद-अदुःखद संवेदनाओं की अनुभूति होती है, उनसे तो बहुत गहरा और सीधा संबंध है। जहां इन संवेदनाओं का विकारों के प्रजनन और संवर्धन से सीधा संबंध है वहां उनके संवर, उनकी निर्जरा और क्षय से भी इनका सीधा संबंध है। इन संवेदनाओं की अनुभूति होने पर अबोध अवस्था में जब-जब राग-द्वेषमयी तृष्णा की प्रतिक्रिया करते हैं तब-तब विकार उत्पन्न हो-होकर संवर्धन को प्राप्त होते हैं। यों नए-नए कर्मसंस्कारोंका ढेर लगने लगता है। क्योंकि यह प्रतिक्रियात्मक चेतना ही तो कर्म है, कर्मसंस्कार है। इन्हीं संवेदनाओं को इनके अनित्य स्वभाव में साक्षीभाव से देखने से विकार-प्रजनन के स्वभाव का संवर होता है। इससे नए कर्मसंस्कार बनते नहीं और पुरानों की उदीरणा होती है, निर्जरा होती है और उनका क्षय हो जाता है। यों होते-होते जब अधोगति की ओर ले जाने वाले सारे कर्मसंस्कार नष्ट हो जाते हैं तो निरोध-निर्वाण की नित्य, शास्वत, ध्रुव अवस्था का पहली बार साक्षात्कार होता है और साधक मुक्ति के स्रोत में पड़ जाता है।

अनाथपिंडिक इस गंभीर उपदेश को बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह अनेक जन्मों की प्रभूत पारमिताओं का धनी था। इन पारमिताओं का बल ही शुद्ध धर्म सुनने और समझने में उसका सहायक बन गया था। इस पुण्य-बल के कारण ही भगवान का उपदेश सुनते-सुनते उसे सारे शरीर में नन्हीं-नन्हीं उर्मियों के उदय-व्यय की अनुभूति होने लगी। अनित्यबोधिनी प्रज्ञा स्थिर होने लगी। मुक्तिदायिनी समता पुष्ट होने लगी। अनेकानेकपूर्व जन्मों में शुद्ध धर्म के संपर्क में आ-आकर अपनी पुण्य पारमिताएं पुष्ट करते हुए उसने अपने मन को पर्याप्त मात्रा में प्रांजल कर लिया था। अधोगति की ओर ले जाने वाले जो थोड़े-बहुत कर्मसंस्कार बचे थे, अब स्वतः जाग्रत हुई इस विपश्यना विद्या द्वारा उनकी भी उदीरणा हुई और उनका क्षय हुआ। अतः भगवान का उपदेश पूरा होते-होते उसी आसन पर बैठे-बैठे उसके भीतर विरज विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुए। अर्थात सभी काल्पनिक मान्यताओं के आवरणों को दूर कर सच्चाई को यथार्थ रूप से अनुभव कर सकने की विमल क्षमता प्राप्त हुई। जैसे कि सी मैले कपड़े को बिल्कुल साफ करके रँगे तो उस पर बहुत चटकदार रंग चढ़ता है, ऐसे ही उसके स्वच्छ हुए मानस पर शुद्ध धर्म का कल्याणकारी रंग चढ़ा और उसे यकायक निरोध अवस्था की अनुभूति हो गयी। शरीर और चित्त के समुदय और व्यय रूपी अनित्यधर्मा स्वभाव का अनुभव करते-करते तरंगातीत इंद्रियातीत अवस्था का अनुभव हो गया। वह इस सत्य को स्वानुभूति द्वारा जान गया कि जो कुछ समुदयधर्मा और व्ययधर्मा है, वह निरोधधर्मा भी है। समुदय और व्यय होना उसका स्वभाव है परंतु अब देखा कि इस समुदय-व्यय का जो अनित्यधर्मा क्षेत्र है, उसके परे निरोध, निर्वाण का नित्यधर्मा क्षेत्र भी है। अनाथपिंडिक ने दोनों क्षेत्रों का अनुभव कर लिया। इन दोनों क्षेत्रों का स्वयं दर्शन कर यानी उनका अनुभव कर वह निहाल हो गया। स्रोतापन्न हो गया।

अनाथपिंडिक को धर्म की सच्चाई अनुभूतियों के स्तर पर प्राप्त हुई। वेदनाओं के आधार पर विदित हुई। प्रगाढ़रूप से उपलब्ध हुई। अब उसके लिए सद्धर्म के प्रति संदेह के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। किसी दार्शनिक मान्यता को लेकर वाद-विवाद करने का कोई कारण नहीं रह गया। भविष्य के प्रति कोई भय नहीं रह गया। किसी काल्पनिक अदृश्य सत्ता पर आश्रित-निश्रित रहने की आवश्यकता नहीं रह गयी। वह धर्म की यथार्थ धरती पर खड़ा होकर स्वयं स्वाधीन हुआ, स्वतंत्र हुआ। उसके लिए भगवान की शिक्षा का महत्त्व बहुत स्पष्ट हुआ। उसकी उपादेयता बहुत स्पष्ट हुई। अपने विकारशून्य चित्त में ऐसी प्रणीत शांति का अनुभव हुआ जो कि उसे न कभी किसी कर्मकांड पूरा करने से प्राप्त हुआ था और न किसी दार्शनिक मान्यता को अंधश्रद्धापूर्वक मान लेने से।

वह कृतज्ञता-विभोर होकर बोल उठा –

–कितनी प्रेयस और श्रेयस है, भगवान, आप की यह अद्भुत शिक्षा! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे। ढके को उघाड़ दे। भूले-भटकों को सही रास्ता बता दे। अंधकार में तेल का दीपक जला

कर रख दे जिससे कि आंख वाले यथार्थ को देख सकें। भगवान आपने अनेक प्रकार से धर्म की सच्चाई प्रकट की है। मैं निहाल हुआ। भंते, मैं भगवान की, धर्म की और भिक्षु-संघ की शरण ग्रहण करता हूं। भंते, आज से मुझे प्राण-पर्यंत अपना श्रद्धालु उपासक स्वीकार करें।

तत्पश्चात उसने श्रद्धाबहुल हो भगवान से प्रार्थना की कि वे भिक्षु-संघ सहित भोजन का निमंत्रण स्वीकार कर उसे कृतार्थ करें। आज का भोजन तो उसके साले के यहां ले रहे हैं अतः उसने कल के भोजन के लिए भगवान को संघ सहित आमंत्रित किया जिसे भगवान ने मौन रह कर स्वीकार किया।

अनाथपिंडिक जब लौटा तो उसका मन प्रसन्न-प्रफुल्लता से उल्लसित था। आज उसने भगवान बुद्ध का दर्शन किया है। नाम और रूप के याने चित्त और शरीर के अनित्य-स्वभावी धर्म का दर्शन किया है और उसके परे नित्य-स्वभावी निरोध-निर्वाण धर्म का भी दर्शन किया है। उसका मानव जीवन सफल हुआ है। धन्यता से भर उठा है। धर्म-मांगल्य से भर उठा है।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

साधकों के उद्गार

● सत्तर वर्षीय श्री नटुभाई पटेल अमेरिका से लिखते हैं, "आप से धर्म सीखा हूं और आप के बताये अनुसार उसे धारण कर रहा हूं। अगस्त १९९२ में अमेरिका के डलास के केंद्र पर पहला शिविर किया।इससे पहले मैं बहुत दुःखी था। मैंने दुख को मिटाने के लिए बहुत सारे प्रयत्न किए परंतु वे बढ़ते ही जाते थे। शिविर में भी जब मैं ध्यान में बैठा तो एक दिन मानो दुःखों का विस्फोट ही हो गया। केंद्र पर जाने से पहले मैं मेरे चार भारतीय दुश्मनों को समाप्त करने के लिए गुंडों की मदद लेने वाला था। साधना के समय अंदर से ऐसा विचार जागा कि वे सब मेरे मित्र जैसे लगने लगे और मैं बिल्कुल शांत और सुखी हो गया। अब मेरे दुख कहां चले गये, यही नहीं पता चलता। यह सब विपश्यना का ही कमाल है।

दूसरा बड़ा दुःख इस बात से था कि मेरे ६ लड़कियां और एक लड़का है। भारत में रहने वाली दो लड़कियों (बाकी विदेशों में हैं) में से एक मुझे बिल्कुल पसंद नहीं थी। मैंने उसे अपने घर से निकाल दिया था और बाद में भी आने से मना कर दिया था। मैं उससे फोन पर भी बात नहीं करता था। लेकिन विपश्यना के बाद मेरा मन बिल्कुल बदल गया और जब भारत गया तो सबसे पहले उसी के घर गया। अब वह मुझे सबसे प्रिय लगने लगी है।

एक और घटना – एक बार मैं रात में सो रहा था कि अचानक बड़ी जलन और बेचैनी आने लगी। विचार आया कि बाहर निकलकर खुले में जाऊं या फिर कोई मेरे ऊपर ठंडा पानी डाले। परंतु फिर होश आया कि यह सब अपने अंदर की ही बेचैनी है। टोरनेडो की लकड़ी के घर्षण से जैसे जंगल में आग लग जाती है और जंगल जल कर राख हो जाता है, उसी प्रकार विचारों के घर्षण की यह जलन भी समाप्त हो जायगी। फिर जो बचेगा वह ज्ञान ही बचेगा। यों विचार-मंथन की वाला समाप्त हुई और अंततः बड़ा सुख अनुभव होने लगा।

एक दूसरा प्रसंग – पहले मैं बिल्कुल रावण जैसा था पर अब राम की तरह जीवन जीने लगा हूं। १९९४ में मुझे शरीर में कुछ गड़बड़ होने का आभास हुआ। १०-१२ दिन तक ध्यान दिया पर कुछ समझ में नहीं आया लेकिन पेशाब में अनियमितता थी इसलिए डॉक्टर को दिखाया। उसने निदान किया कि प्रोस्टेट का कैंसर है लेकिन बिल्कुल प्रारंभिक अवस्था है। उसे आश्चर्य भी हुआ कि इतनी जल्दी कैसे पकड़ में आ गया? पर मैं बिल्कुल शांत रहा और मुस्कराया, 'यह भी समाप्त होगा'। डॉक्टर चाइनीज था उसने विशेषज्ञ के पास भेजा। वह भी चकराया कि इतनी जल्दी तुम्हें कैसे पता चल गया? जब यह अगली स्टेजेज में जाता तो असह्य वेदना होती। खैर, इस अवस्था में आपरेशन की बजाय रैडियेशन थेरापी से इलाज करना उचित रहेगा। पूर्ण समता के साथ मैंने वह कोर्स पूरा किया और अब बिल्कुल ठीक हूं।

भारत आकर आपके प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूं। अब विपश्यना मेरे जीवन का अंग बन चुकी है। जीवन-मरण से छुटकारा पाने का आपने जो रास्ता दिखाया है उसी पर चलना है। जीवन में कितने अनुभव हुए उन सबको लिखना संभव नहीं परंतु विपश्यना के स्पर्श से सारे विकारों का शमन होते जा रहा है। अब बुरे विचार और विकार सारे निकल गये और जीवन शांतिपूर्ण हो गया है। फिर भी जो धर्म धारण किया है उसकी परीक्षा भी मुझे ही करनी है। मुझे स्वयं ही मेरा दर्पण बनना है।

आप मुझे विद्या देने वाले गुरु हैं इसलिए मैंने ये सारी बातें आप को बतायी। जीवन में आगे बढ़ने के लिए आप का ही मार्गदर्शन चाहिए। जैसे मेरा मंगल हुआ ऐसे ही सब का मंगल हो!"

जेल शिविर के साधकों के उद्गार

● तिहाड़ जेल से ३५ वर्षीय श्री विजयकुमार राकेशकुमार लिखते हैं, "जब से मैं शिविर में गया हूं सारा जीवन बदल गया। पहले मेरा मन बहुत भटकता था परंतु धीरे-धीरे एकाग्र होने लगा है। मुझे स्थूल और सूक्ष्म दोनों संवेदानाओं की अनुभूति हुई। पहले मेरे मन की भावना इस प्रकार रहती थी कि मैं ज्यादा से ज्यादा धन किस प्रकार एकत्रित कर लूं। पर अब सोचने लगा हूं कि धन एकत्रित करके कोई फायदा नहीं है। न कुछ लेकर आया था और न कुछ लेकर जाऊंगा। इसलिए लालच मुझे व्यर्थ प्रतीत होने लगी है। मुझे ७-८ वर्ष से नींद न आने की बीमारी थी। सोते समय हर १५ मिनट में उठ कर बैठ जाता और बार-बार पेशाब के लिए जाना पड़ता। ९ महीने तक इलाज कराया पर कोई फायदा नहीं हुआ। अब विपश्यना से यह सब ठीक हो गया है। अब मैं नित्य ६-६ घंटे साधना कर लेता हूं। बुरी भावनाएं कम होती जा रही हैं। अब तो लगता है कि कोई लँगड़ा-लूला हो तो उसकी सेवा में ही सारा समय बिताऊं।

पैसे कमाने के लालच में कुछ गलती कर गया इसलिए यहां आना पड़ा। पर अब लगता है यह सब बेकार है। अब ऐसा नहीं लगता कि किसी का छीन लूं – यहां भी, बाहर भी। संवेदनाओं का निरीक्षण करते-करते जो परिवर्तन आया है वह बड़ा महत्वपूर्ण है। अब तो यही चाहता हूं कि शेष जीवन साधना और सेवा ही करूं।"